उसके पूर्व भरतक्षेत्र के अलका नामक देश में एक अयोध्या नाम की नगरी है । उस में किसी समय अजितंमय नाम का राजा राज्य करता था । उसकी स्त्रीका नाम अजितसेना था । एक दिन रातमें अजितसेनाने हाथी, बैल, सिंह, चन्द्रमा, सूर्य पद्म सरोवर, शंख और जल से भरा हुआ घट ये आठ स्वप्न देखे । सबेरा होते पतिदेव महाराज अजितंजय से स्वप्नों का फल पूछा । तब उन्होंने कहा-कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी पुण्यात्मा जीवने अवतरण किया है । ये स्वप्न उसीके गुणोंका सुयश वर्णन करते हैं । वह हाथीके देखने से गभ्भीर, बैल और सिंह के देखने से अत्यन्त बलवान, चन्द्रमा को देखनेसे सबको प्रसन्न करने वाला, सूर्य के देखने से तेजस्वी, पद्म-सरोवर के देखने से निधियों का स्वामी होगा । स्वप्नोंका फल सुनकर रानी अजितसेना को अपार हर्ष हुआ । पाठक यह जानने-के लिये उत्सुक होंगे कि अजितसेना के गर्भ में किस पुण्यात्माने अवतरण लिया है । उसका उत्तर यह है कि उपर पहले स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में जिस श्रीधर देव का कथन कर आये है, वही वहां की आयु पूर्णकर महारनी अजितसेना के गर्भ में आया हैं गभकाल व्यतीत होने पर रानीने शुभ मुहूर्त में पुत्ररत्न पैदा किया, जो बड़ा ही पुण्यशाली था । राजाने उसका नाम अजितसेन रखा । अजितसेन बड़े प्यार से पाला गया जब उसकी अवस्था योग्य हो गई तब राज अजितंजय ने उसे युवराज बना दिया और तरह तरह की राजनिति का उपदेश दिया ।

एक दिन महाराज अजितंजय युवराज के साथ राजसभा में बैठे हुए थे इतने में वहां से एक चन्द्ररू चि नाम का असुर निकला । ज्योंहि उसकी दृष्टि युवराज पर पड़ी त्योंही उसे अपने पूर्वभव के बैर का स्मरण हो आया । वह क्रोध से कांपने लगा, उसकी आंखे लाल हो गई और भौंहे टेढ़ी । बदला चुकाने के लिये यही समय योग्य है ऐसा सोचकर उसने समस्त सभाके लोगोंको माया से मूर्छित कर दिया और युवराज को उठाकर आकाशमें ले गया । इधर जब माया-मूर्छो दूर हुई तब राजा अजितंजय पास में पुत्र को न पाकर बहुत दुखी हुए । उन्होंने उस समय ह्रदय को पानी पानी कर देनेवाले शब्दोंमे विलाप किया पर कोई कर ही क्या सकता था । चारों ओर वेगशाली घुड़सवार छोड़े गये, पर कहीं उसका पता न चला । उसी दिन जब राजपुत्र के विरह में रू दन कर रहा था तब आकाशसे कोई तपोभूषण नाम के मुनिराज राजसभा में आये । राजाने उनका योग्य सत्कार किया । मुनिराजके आगमनसे उसे इतना अधिक हर्ष हुआ था कि वह समय पुत्रके हरे जानेका भी दुख भूल गया था । उसने नम्र वाणीमें मुनिराज ती स्तुति की । धर्मवृध्दिरस्तु कहते हुए मुनिराजने कहा राजन् !छ मै अवधिज्ञान रू पी लोचनसे तुम्हें व्याकुल देखकर संसारका स्वरू प बतलानेके लिये आया हूं । संसार वही है जहां पर इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग हुआ करते है । अशुभ कर्मके उदयसे प्राय: समस्तप्राणियों को इष्टका वियोग ओर अनिष्टका संयोग हुआ करता है । आप विव्दान है । इसलिये आपको पुत्र वियोग का दु:ख नहीं करना चाहिये । विश्वास रखिये आपका पुत्र कुछ दिनोंमें बडें वैभवके साथ आप के पास आ जायेगा

छ । इतना कहकर मुनिराज तपोभूषण आकाश मार्गसे बिहार और राज भी शोक (आश्चर्य) पूर्वक समय बिताने लगे । अब सुनिये युवराज का हाल चन्द्रंरू चि असुर युवराज को सभा क्षेत्रसे उठाकर आकास में ले गया और वहां उसकेमारने केलिये उपसुक्त स्थान की तलाश करने लगा । अन्तं में उसने बहुत जगह तलाश करने केबाद युवराज को मगरमच्छ आदिसे भरे हुये एक मनोरम नाम केतालाब में आकाश से पटक दिया और आप निच्छिंत होकर अपने घर पर चला गया । युवराज को उसने बहुत ऊंचेसे पटका अवश्य था पर पुण्यकेउदय से उसे कोई चोट नहीं लगी । अपनी बुजाओं से तैरकर शीघ्र ही तटपर आ गया । तालाब से निकलते ही उसे चारों ओर भयानक जंगल दिखलाई पड़ा ।

उस मे वृक्ष इतने घने थे कि दिन में भी वहां सूर्यका प्रकाश नहीं फैल पाता था । जगह जगह पर सिंह व्याघ्र, आदि दुष्ट जीव गरज रहे थे । इतना सब होने पर भी अल्पवयस्क युवराज ने धैर्य नहीं छोडा । वह एग संकीर्ण मार्गसे उस भयानक अटवीमें - घुसा । कुछ दूर जाने पर उसे एक पर्वत मिला । अटवी की अन्त जानने केलिये ज्योंही वह पर्वत पर चढ़ा त्यों ही वहां वर्षातकेमेघ केसमान एक काल पुरू ष उसकेसामने आया और क्रोधसे गरजकर करने लगा के छ कौन है तू जो मरने की इच्छासे मेरे स्थानपर आया है ?

जहां सूर्य और चन्द्रमा भी पादचार किरणों का फैलव नहीं कर सकते वहां तेरा आगमन कैसा ?

मैं दैत्य हूं इसी समय तुझे यमलोक पहुंचाये देता हूं । उसकेवचन सुनकर युवराज ने हंसते हुए कहा कि आप बडे योध्दा मालूम होते है । इस भीषण अटवी पर आपका क्या अधिकार है ? यहांका राजा कोई तो मृगराज होना चाहिये । पर कुमार केशांती मय वार्तालाप का उस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा । वहां पहले की तरह ही यद्वा तद्वा बोलता रहा । तब कुमार को भी क्रोध आ गया । दोनों में डटकर मल्ल युध्द हुआ । बन देवियां झाडियोंसे छिपकर दोनों की युध्द लीलाएं देख रही थीं । कुछसमय बाद कुमारने उसे भपूर पछाडने केलिए उठाया और आकाश में घुमाकर पछाड़ना ही चाहते थे कि उसने अपना मायावी वेष छोड़ दिया और असली रुपसे प्रकट होकर कहने लगा - च बस, कुमार ! मै समझ गया कि आप बहुत ही बलवान पुरुष है । उस मा का धन्य है जिसने आप जैसा पुत्र उत्पन्न किया । मैं हिरण्य नामका देव हुं । अकृत्रिम चैत्यालयों की बन्दना केलिए गया था । वहांसे लौटकर यहां आया था और कृत्रिम वेष से यहां मैंने आपकी परीक्षा की । आप परीक्षा पास हो गये । आप धीर हों, वीर हो, गम्भीर हों । मैं आप केगुणों से उत्यन्त प्रसन्न हूं । अब आप कुछ भी चिन्ता न किजिये,

आप विशाल वैभवकेसाथ कुछ दिनोंमे ही अपने माता पिता केपास पुहंचे जायेंगे अब सुनिये मैं आपकेजन्मान्तरकी कथा कहता हूं छ - इस भवसे पूर्व तीसरे भव में आप सुगन्धि देश का राजा थे, आपकी राजधानी श्रीपुरी थी । वहां आप श्रीवर्मा नाम से प्रसिध्द थे । उसी नगर में शशी और सूर्य नाम केदो किसान रहते थे । एक दिन शशीने घरमें सन्धि कर सूर्यका धन हर लिया तब सूर्यने -आपसे निवेदन किया तब आपने पता चलाकर शशी को खूब पिटवाया ओर सूर्य का धन वापिस दिलवा दिया ।

पिटते पिटते शशी मर गया जिससे वह चन्द्ररुचि नामका असुर हुआ है और सूर्य मर कर मैं हिरण्य नामका देव हुआ हूं । पूर्वभवकेबैरसे ही चन्द्ररुचिने हरण कर आपकेलिये कष्ट दिया है और मैं उपकारसे कृतज्ञ होकर आपका मित्र हुआ हूं । इतना कहकर वह देव अन्तर्हित हो गया । वहांसे कुमार थोड़ा ही चला था कि वह विशाल अटवी जिसकेकी अन्तं का पता नहीं चलता था समाप्त हो गई । युवराज ने वह सब उस देवका ही प्रभाव समझा । अटवी से निकल कर यह पास केकिसी देश में पहुंचा । वहां उसने देखा कि समीपवर्ती नगर से बहुतसे पौरजन घबड़ाये हुए भागे जा रहे है । जानने की इच्छासे उसने किसी मनुष्यसे भागने का कारण पूछा । उत्तर में मनुष्यने कहा-क्या आकाशसे पड़ रहे हो जो अपरिचित से बनकर पूछते हो । तब युवराज ने कहा - भाई ! च मैं परदेशी आदमी हूं मूझे यहांका कुछ भी हाल मालूम नहीं है । अनुचित न हो तो बतलाने का कष्ट कीजिये छ। युवराजकी नम्र और मधुर वाणीसे प्रसन्न होकर मनुष्य ने कहा तो सुनिये , यह अरिंजय नामका देश है, यह सामनेका नगर इसकी राजधानी है , इसका विपुल है । यहां जयवर्मा राजा राज्य करते हैं उनकी स्त्री का नाम जयश्री हैं । इन दोनोंकेएक शशिप्रभा नाम की लड़की है जो सौन्दर्य सागर में तैरती हुई -सी जान पड़ती है । किसी देश केमहेन्द्र नामकेराजाने महाराज जयवर्मा से शशिप्रभा की याचना की । जयवर्मा उस को साथ शशिप्रभा की शादी करने केलिये तैयार हो गये पर एक निमित्तज्ञानीने महेन्द्र अल्पायु हैं कहकर उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया । महेंन्द्र को यह बात सह्य नहीं हुई इसलिये वह बड़ी भारी सेनाको लेकर महाराज जयवर्मासे लड़कर जबरदस्ती शशिप्रभा को हरने केलिये आया है । उसकी सेनाने विपुलपुर को चारों ओरसे घेर लिया है । जयवर्माके पास उतनी सेना नहीं है जिससे वह महेन्द्रका सामना कर सके । उसके सैनिक नगरमै उधम मचा रहे है इसलिये समस्त पुरवासी डर कर भाहर भागे जा रहे हैं । अब बस मुझे बहुत दूर जाना है । इतना कहकर कर वह मनुष्य भाग गया । युवराज जब कुतुहूल पूर्वक विशाल पुरकी सीमा पर पहुंचे और उसकेभीतर जाने लगे तब राजा महेन्द्र केसैनिकौने उन्हें भीतर जानेसे रोका जिससे उन्हें क्रोध आ गया । युवराजने वहीं पर किसी एक केहाथ से धनुषवाण छीनकर राजा महेन्द्रलिंहसे युध्द करना प्रारभ्भ कर दिया और थोड़ी देरमें उसे धराशाली बना दिया । शत्रुकी मृत्यु सुनकर जयवर्मा बहुत ही प्रसन्न हुये । वे कुमारको बड़े आदर सत्कार से अपने घर लिवाले गये वहॉ-शशिप्रभा युवराज पर आसक्त हो गई । राजा जयवर्मा को जब इस बातका पता चला तब उसने हर्षपूर्वक युवराजके साथ शशिप्रभा का विवाह करना स्वीकार कर लिया ।

युवराज कुछ दिनो तक वहीं रहे आये । विजयार्ध्द गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें एक आदित्य नामका नगर है जो अपनी शोभ से आदित्य-विमान (सूर्य-विमान) को भी जीतता है । उस में धरणी-ध्वज नाम का विद्याधर राज्य करता था । धरणीध्वजने अपने पौरू ष से समस्त विद्याधरों को अपने आधीन बना लिया था । एक दिन वह राजसभामें बैठा हुआ था कि वहां पर एक क्षुल्लकजी आये । राजाने उनका खड़े होकर स्वागत किया और उन्हें ऊंचे आसन पर बैठाआ । बातचीत होते होते क्षुल्लकजी ने कहा कि

अरिंजय देशके विपुल नगरके राजा जयवर्मा के एक शशिप्रभा नामकी कन्या है जिसके सात उसका विवाह होगा । वह तुम्हे मारकर भरतक्षेत्र का पालन करेगा क्षुल्लक के वचन सुनकर राजा धरणीध्वजको बहुत दु:ख हुआ । जब क्षुल्लकजी चले गये तब उसने कुछ मन्त्रियों की सलाह से विद्याधरों की बड़ी भारी सेना के साथ जाकर विपुल नगर को घेर लिया और वहां के राजा जयवर्मा के पास दूत भेजकर संदेशा कहलाया की तुमने जो एक विदेशी लडके क साथ शशिप्रभा की शादी करना स्वीकार कर लिया है वह ठीक नहीं है क्योंकि जिसके कुल, बल , पौरू ष वगैरहका कुछ भी पता नहीं है उसके साथ लड़की की शादी कर देनेसे सिवाय अपयश के कुछ भी हाथ नहीं लगता, इसलिये तुम शीघ्र ही शशिप्रभा का विवाह मेरे साथ कर दो जयवर्मा ने चाहे कुलीन हो या अकुलीन दी हुई कन्या फिर किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती, कह कर इनको वापिस कर दिया और लड़ाईकी तैयारी करनी शुरू कर दी । जयवर्मा को युध्द केलिये चिन्तित देख कर युवराज अजितसेन ने कहा कि आप मेरे रहते हुए जरा भी चिन्ता न किजियेगा । मै इन गीदड़ो-को अभी मार कर भगाये देता हूं, ऐसा कहकर युवराज ने हिरण्यक देव का, जिसका पहले अटवीमें वर्णन कर चुकें है स्मरण किया । स्मरण करते ही वह दिव्य अस्त्र शस्त्रों से भरा हुआ के रथ लेकर युवराज केपास आ गया । समस्त नगरवासियों को आश्चर्य करते हुए युवराज अजितसेन उस रथ पर सवार हुए । हिरण्यक देव चतुराई पूर्वक रथको चलाने लगां विद्याधरेन्द्र धरणी-ध्वज और कुमार अजितसेनकी जमकर लड़ाई हुई । अन्तमें कुमारने उसे मार दिया जिससे उसकी समस्त सेना भाग खड़ी हुई । कार्य हो चुकने पर युवराजने सम्मान पूर्वक हिरण्यक देवको विदा किया और धूम धामसे नगर में प्रवेश किया । कुमारकी अनुपम वीरता देखकर समस्त पुरू वासी हर्षसे पूले न समाते थे । राजा जयवर्माने किसी दिन शुभमुहूर्तमें युवराजके साथ शशिप्रभाका विवाह कर दिया । विवाह के बाद युवराज कुछ दिन तक वहीं रहे आये और शशिप्रभा के साथ अनेक काम कौतूहल करते रहे फिर कुछ दिनों बाद अयोध्यापुरू वापिस आ गये । पिता अजितंजयने बधू सहित आये हुए पुत्रका बड़े उत्सवकेसाथ नगर में प्रवेश कराया । पुत्रकी वीर चेष्टाएं सुन सुनकर माता पिता बहुत ही हर्षित होते थे । किसी एक दिन अशोक नामकेबनमें स्वयंप्रभ तीर्थंकर का समवसरण आया । बनमाली से जब राजा को इस बातका पता चला तब वे शीघ्र ही तीर्थेश्वर की बन्दना केलिये गये । वहां जाकर उन्होंने आठ प्रातिहार्योसे शोभित स्वयंप्रभ जिनेन्द्रको नमस्कार किया और नमस्कार कर मनुष्यों के कोठे में बैठ गये । जिनेन्द्र के मुखसे संसार का स्वरू प सुनकर वे इतने प्रभावित हुए कि वहीं पर गणधर मगाराजसे दीक्षा लेकर तप करने लगे । युवराज अजितसेन को पिता केवियोगसे बहुत दु:ख हुआ पर संसारकी रीतिका विचार कर वे कुछ दिनों बाद शान्त हो गये । मंत्रिमण्डल ने युवराज का राज्याभिषेक किया । उधर महाराज अजितंजय को केवलज्ञान प्रप्त हुआ और इधर अजितसेन की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ । पहले धर्म कार्य ही करना चाहिये ऐसा सोचकर अजितसेन पहले अजितंजय महाराजके कैवल्य महोत्सव में सामिल हुए । फिर वहांसे आकर दिग्विजय केलिये गये उस समय उनकी विशाल सेना एक लहराते हुए समुद्र की तरह

मालूम होती थी । सब सेना के आगे चक्ररत्न चल रहा था । क्रम क्रम से उन्होंने समस्त भरतक्षेत्र की यात्रा कर उसे अपने आधीन कर लिया । जब चक्रधर अजितसेन दिग्विजयी होकर वापिस लौटे तब हजारों मुकुटबध्द राजाओंने उनका स्वागत किया । राजधानी आयोध्या में आकर अजितसेन महाराज न्यायपूर्वक प्रजाका करने लगे ।

इनके राज्यमें कभी कोई खाने पीने के लिये दु:खी नहीं होता था । एक दिन इन्होंने मासोपवासी अरिदम महाराज के लिये आहार दान दिया जिससे देवोंने इनके घर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे । सच है पात्र दानसे क्या नहीं होता ? किसी दिन राजा अजितसेन वहांके मनोहर नामक उद्यानमें गुणप्रभ तीर्थकर की बन्दना करनेके लिये गये थे । वहां पर उन्होंने तीर्थकर के मुख से धर्म का स्वरू प सुना, अपने भवान्तर पूछे, चारों गतियों के दु:ख सुने जिससे उनका हृदय बहुत ही विरक्त हो गया । निदान उन्होंने जितशत्रु पुत्र को राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ जिन-दीक्षा धारण कर ली । उन्होंने अतिचार रहित तपश्चरण किया और आयु के अन्त में नमस्तिलक नामक पर्वतपर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गके शांतिकार विमान में इन्द्र पद प्राप्त किया । वहा उनकी आयु बाईस सागर की थी, तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वे बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार ग्रहण करते और बाईस पक्ष बाद एक बार श्वास लेते थे । उन्हें जन्म से ही अवधिज्ञान था, वे तीनों लोकों में इच्छानुसार घूम सकते थे । इस तरह वहां चिरकाल तर स्वर्गीय सुख भोगते रहे । धीरे धीरे उनकी बाईस सागर प्रमाण आयु समाप्त, हो गई पर उन्हें कुछ पता नहीं चला । ठीक कहा है - साता उदै न लख परै कैत्ता बीता काल । वहांसे चयकर वह पूर्व घातकी खण्डमें सीता नदी के दखिण तटपर स्थित मंगलावती देश के रत्न संचयपुर नगरमें राजा कनकप्रभ और रानी कनकमालाके पद्मनाभ नामका पुत्र हुआं पद्मनाभ बड़ा ही तार्किक न्यायशास्त्रका वेत्ता था । उसके बल-पौरू ष की सब ओर प्रशंसा छाई हुई थी । एक दिन कनकप्रभ महाराज मकानकी छतपर बैठकर नगलकी शोभा देख रहे थे कि उनकी दृष्टि सहसा एक पल्वल-स्वल्पजलासय पर पड़ी । नगर के बहुतसे बैल उसमें पानी पी पी कर बाहर निकलते जाते थे उसीमे एक बूढ़ा बैल भी पानी पीनेके लिये गया पर वह पानी के पास पहुंचने के पहले ही कीचड़में फंस गया । असमर्थ होने के कारण वह कीचड़से बाहर नहीं निकल सका जिससे वह प्यासा बैल वही तड़फड़ाने लगा । उसकी बेचैनी देखकर कनकप्रभ महाराज का हृदय विषय-भोगोंसे अत्यंन्त विरक्त हो गया जिससे वे पद्मप्रभ को राज्य देकर श्रीधर मुनिराज के पास दीक्षा ले तपस्या करने लगे । इधर पद्मनाभने नीतिपूर्वक राज्य करना प्रारभ्भ कर दिया । उसकी अनेक राजकुमारियों के साथ शादी हुई थी जिनमें सोमप्रभा मुख्य थी । कालक्रम से सोमप्रभा के सुवर्णनाभि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । उन सबसे पद्मप्रभ का गार्हस्थ जीवन बहुत ही सुखमय हो गया था ।

एक दिन राजा पद्मनाभ सभा में बैठे हुए कि बनमालीने आकर उन्हें मनोहर नामक उद्यान में श्रीधर मुनिराज के आगमन का शुभ समाचार सुनाया । राजाने प्रसन्न होकर बनमाली को बहुत कुछ

पारितोषिक दिया और सिंहासन से उतरकर जिस ओर मुनिराज विराजमान थे उस ओर सात कदम आगे जाकर उन्हें नमस्कार किया । उसी समय मुनि बन्दनाको चलनेके लिये नगरमें भेरी बजवाई गई । जब समस्त पुरवासी उत्तम उत्तम वस्त्र आबूषण पहिनकर हाथोंमें पूजाकी सामग्री लिये हुए राजव्दार पर जमा हो गये तब सबको साथ लेकर वे उस उद्यान में गये जहां मुनिराज श्रीधर विराजमान थे । राजाने दूरसे ही राज्यचिन्ह छोड़कर विनीत भावसे बन में प्रवेश किया और मुनिराज के पास पहुंचकर उन्हें अष्टाड्. नमस्कार किया । मुनिराजने धर्म वृध्दिरस्तु, कहकर सबके नमस्कार ग्रहण कियें । जब जय जयका कोलाहल शान्त हो गया तब राजा पद्मनाभ ने मुनिराज से अनेक दर्शन विषयक प्रश्न किये । मुनिराज के मुखसे समुचित उत्तर पाकर वे बहुत ही हर्षित हुए । बादमें-उसने मुनिराज से अपने पूर्वभव पूछे सो मुनिराजने उनके अनेक पूर्वभवों का वर्ण किया । बनसे लौटकर पद्मनाथ राज भवनमें वापिस आ गये । और वहां कुछ दिनोंतक राज्य शासन करते रहे । अन्तमें उनका चित्त किसी कारण वश विषय वासनाओंसे विरक्त हो गया जिससे उन्होंने सुवर्णनाभि पुत्र को राज्य देकर किन्हीं महामुनिके पास जिनदीक्षा ले ली । उनके साथमें और भी अनेक राजाओंने दीक्षा ली थी । मुनिराज पद्मनाभ ने गुरू के पास रहकर खूब अध्ययन किया जिस से उन्हें ग्यारह अंगो तक का ज्ञान हो गया । उसी समय उन्होंने दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध कर लिया और आयुके अनतमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया ।

वहां उनकी आयु तेतीस सागर की थी, एक हात ऊंचा सफेद रगका शरीर था । वे तेतीस हजार वर्ष आहार और तेतीस पक्ष बाद श्वासोत्थवास ग्रहण करते थे । उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था । यह अहमिन्द्र ही आगेके भवमें अष्टम तीर्थेश्वर भगवान चन्द्रप्रभ होगा ।

हुए बिना नहीं रह सकता। विकृत होने की क्या बात? नष्ट हो जाता है। इस शरीर में राग रहनेसे सम्बन्ध रखने वाले और भी अनेक पदार्थोसे राग करना पडता है। अब मैं ऐसा काम करुंगा जिससे आगे के भवमें यह शरीर प्राप्त ही न हो। उस समय देवर्षि लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन का समर्थन किया। भगवान् चन्द्रप्रभ अपने वर चन्द्रपुत्र के लिये राज्य देकर देवनिर्मित विमला पालकीपर सवार हो सर्वर्तुक नामके बनमें पहुंचे और वहां सिद्ध परमेंष्ठीको नमस्कार कर पौष कृष्ण एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें एक हजार राजाओं के साथ निर्ग्रथ मुनि हो गये। उन्हें दिक्षाके समय ही मन:पर्याय ज्ञान प्राप्त हो गया था। वे दो दिन बाद आहार लेनेकी इच्छासे नलिनपुर नगरमें गये वहां महाराज सोमदत्तने पडगाह कर उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्र दान के प्रभावसे देवोंने सोमदत्त के घर पंचाश्चर्य प्रकट कीये । मुनिराज चन्द्रप्रभ नलिनपुर से लौटकर वन में फिर ध्यानारुढ हो गये। इस तरह छद्मस्थ अवस्था में तप करते हुए उन्हें तीन माह बीत गये। फिर उसी सर्वर्तुक वनमें नाग वृक्षके नीचे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा कर विराजमान हुए ।वहीं उन्होंने क्षपक श्रेणी मांडकर मोहनीय

कर्म का नाश किया। और शुक्ल ध्यानके प्रतापसे शेष तीन घातिया कर्मोका भी नाश कर दिया। जिससे उन्हें फाल्गुन कृष्ण सप्तमी अनुराधा नक्षत्रमें शामके समय दिव्य ज्योति लोकालोक प्रकाशक केवल इ ाानप्राप्त हो गया था।

देवोंने आकर ज्ञानकल्याण का उत्सव किया। इन्द्र की आज्ञा पाकर कुवेरने वहींपर समवसरण की रचना की थी जिसमें समस्त प्राणी सुखसे बैठे थे। समवसरणके मध्यमें स्थित होकर भगवान चन्द्रप्रभने अपना मौन भंग किया। अर्थात् दिव्य ध्वनिके द्वारा कल्याणकारी उपदेश दिया। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक नर-नारियोंने मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके ब्रत धारण किये। दिव्य ध्वनि समाप्त होनेके बाद इन्द्रने विहार करेनेकी प्रार्थना की जिससे उन्होंने- अनेक देशोमें विहार किया और अनेक भव्य प्राणियों को संसार सागरसे निकाल कर मोक्ष प्राप्त कराया।

उनके समवसरण में दत्त आदि तेरानवे गणधर थे, दो हजार द्वादशांग के जानकार थे,दो लाख चार सौ शिक्षक थे, दश हजार केवली थे, चौदह हजार विक्रिया ऋध्दि वाले थे, आठ हजार मन:पर्यय ज्ञानी थे, और सात हजार छह सौ वादी थे इस तरह सब मिलाकर ढाई लाख मुनिराज थे। वरुण आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं थी। तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं थी। असंख्यात देव देवियां और असंख्यात तिर्यच थे। उन्होंने अनेक जगह घूम घूमकर धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति की और अन्तमें सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए। वहां उन्होंने हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कीया जिससे उन्हें एक माह बाद फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में शाम के समय मोक्ष की प्राप्ति हो गई। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की ।

भगवान पुष्पदन्त

शान्तं वपू: श्रवणहरि वचश्चरित्रं, सर्वोपकारी तव देव !ततो भवन्तम् ।

संसार मारव महास्थल रुद्रसान्द्र च्छाया महीरुह मिमे सुविधिं श्रयाम: ।।

हे देव ! आपका शरीर शान्त है, वचन कानोको सुख देने वाल है और चरित्र सब को- उपकार करने वाले है इसलिये हम सब, संसार रुपी विशाल मरुस्थलमें सघन छाया वाले वृक्ष स्वरुप आप सुविधिनाथ पुष्पदन्त का आश्रय लेते है।

ि्र पूर्वभव परिचय

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व मेरुसे पूर्व दिशा की और अत्यन्त प्रसिद्ध विदेह क्षेत्र है उस में सीता नदी के उत्तर तटपर पुष्कलावती देश है जो अनेक समृध्दिशाली ग्राम नगर आदिसे भरा हुआ है। उस में एक पुण्डरीकिणी नाम की नगरी है। उसमें किसी समय महापद्म नाम का राजा राज्य करता था। वह बहुत ही बलवान था, बुध्दिमान था। उसकें बाहुबल के सामने अनेक अजेय राजाओंको भी आश्चर्य सागर में गोते लगाने पडतें थे। उसके राज्य में खोजने पर भी दरिद्र पुरुष नहीं मिलता था। वह हमेशा विद्वानोंका समुचित आदर करता था और योग्य वृत्तियां दे देकर उन्हें नई बातोंके खोजने के लिये प्रोत्साहित किया

करता था। उसने काम,क्रोध मद, मात्यर्य, लोभ और मोह इन छह अन्तरंग शत्रुओं को जीत लिया था। समस्त प्रजा उसकी आज्ञा को माला की भांति अपने मस्तक पर धारण करती थी। प्रजा उसकी भलाई के लिये सब कुछ न्यौछावर कर देती थी और वह भी प्रजाकी भलाई केलिये कोई बात उठा नहीं रखता था। एक दिन वहां के मनोहर नामके बनमें महामुनि भूतहित पधारे । नगरकें समस्त लोग उनकी बन्दना के लिये गये। राजा महापद्म भी अपने समस्त परिवार केसाथ मुनिराजकेदर्शनोंकेलिये गया।

वह वहां पर मुनिश्वर की भव्यमूर्ति और प्रभावक उपदेश से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी समय राज्य सुख ,स्त्री सुख आदिसे मोह छोड दिया और धनद नामक पुत्र केलिये- राज्य देकर दीक्षा ले ली। महामुनि भूतहित केपास रहकर उसने कठिन तपस्याएं की और अध्ययन कर ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। किसी समय उसने निर्मल हृदय से दर्शन
विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया जिससे उसे तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया। अन्तमें वह समाधिपूर्वक शरीर छोड कर चौदहवे आनन्त स्वर्ग में इन्द्र हुआ। वहा उनकी आयु बीस सागर की थी, तीन हाथ का शरीर था, शुक्ल लेश्या थी। वह बीस पक्ष र्दश माह बाद श्वास लेता था, बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था, उसकेमानिसिक प्रवीाचार था और पांचवे नरक तक की बात बतलाने वाला अवधिज्ञान था।

उसकेवैक्रियिक शरीर था और उस पर भी अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति,प्राकाम्य ईशित्व और वशित्व ये आठ ऋध्दियां थी। वह अनेक क्षेत्रों में घूम-घूमकर प्रकृतिकी सुन्दरता का निरीक्षण करता था। वह कभी उदयाचल की शिखरपर बैठकर सूर्योदय की सुन्दर शोभा देखता, कभी अस्ताचल की चोटियोंपर बैठकर सुर्यास्तकी सुषमा देखता। कभी मेरु पर्वतपर पहुंचकर नन्दन बन में क्रीडा करता , कभी समुद्रोके तटपर बैठकर उसकी लहरों का उत्ताल नर्तन देखता और कभी हरी भरी अटवियोंमें घूमकर हर्षसे नाचते हुए मयूरोंका ताण्डव देखकर खुश होता था। यह इन्द्र ही आगे चलकर पुष्पदन्त तीर्थकर होगा।

र२ वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीप केभरतक्षेत्र में एक काकन्दी नाम की महा मनोहर नगरी थी। उसमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुग्रीव राज्य करते थे। उनकी स्त्री का नाम जयरामा था। जब इन्द्रकी आयु वहां पर सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तभीसे देवोंने सुग्रीव महाराज केघर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरु कर दी। अनेक देव कुमारियां आ आकर महारानी जयरामा की सेवा करने-लगीं । फाल्गुण कृष्ण नवमी केदिन मूला नक्षत्र में पिछली रात केसमय रानी जयरामाने सोलह स्वप्न देखे। उसी समय इन्द्रने स्वर्ग वसुन्धरासे मोह छोडकर उसके गर्भ में प्रवेश किया।

सवेरा होते ही जब उसने पति देवसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा की आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थकर पुत्र ने अवतार लिया है। वह महा पुण्यशाली पुरुष है। देखो न ! उसकेगर्भमें आनेकेछह माह

पहलेसे प्रतिदिन करोडो रत्न वरस रहे है और देवकुमारियां तुम्हारी सेवा कर रही है। प्राणनाथ के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रानी जयरामा हर्ष से फूली न समाती थी। जब धीरे धीरे गर्भ का समय पूरा हो गया तब उसने मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर मेरु पर्वतपर क्षीर सागर के जलसे उस सद्य-प्रसूत बालक का जन्माभिषेक किया और पुष्पदन्त नाम रखा। उधर महाराज सुग्रीवने भी खुले दिल से पुत्रोत्पत्ति का उत्सव मनाया। बालक पुष्पदन्त बाल चन्द्र की तरह क्रम-क्रम से बढने लगे। भगवान् चन्द्रप्रभ के मोक्ष जाने के बाद नब्बे करोड सागर बीत जानेपर भगवान् पुष्पदन्त हुए थे इनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है। पुष्पदन्त की आयु दो लाख पूर्व की थी शरीर की ऊंचाई सौ धनुषकी थी और लेश्या कुन्द के फुल के समान शुक्ल थी। जब उनकी कुमार अवस्था के पचास हजार पूर्व बीत गये थे तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था। राज्यकी बागडोर ज्योंही भगवान पष्पदन्त के हाथ में आई त्योंही उसकी अवस्था बिलकुल बदल गई थी। उनका राज्य क्षेत्र प्रतिदिन बढता जाता था। उनक मित्र राजाओं की संख्या न थी, प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। पुष्पदन्त का कुलीन कन्याओं के साथ विवाह हुआ था उनकी रुप-राशि और गरिमा देखकर देव- बालाएं भी । लज्जित हो जाती थी। राज्य करते हुए जब उनके पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वाङ्. और भी व्यातीत हो गये तब किसी एक दिन उल्कापात देखने से उनका ह्दय विरक्त हो- गया। वे सोचने लगे- इस संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। सूर्योदय के समय जिस वस्तुको देखता हूं उसे सूर्यास्तके समय नहीं पाता हूं । जिस तरह इन्धनसे कभी अग्नि सन्तुष्ट नही होती उसी तरह पंचेन्द्रियोंके विषयों से मानव अभिलाषां कभी सन्तुष्ट नही होती-पूर्ण नहीं होती। खेद है की मैने अपनी विशाल आयु साधरण मनुष्योंकी तरह योंही बिता दी। दुर्लभ मनुष्य- पर्याय पाकर मैने उनका अभीतक सदुपयोग नही किया। आज मेरे अन्तरंग नेत्र खुल गये है जिससे मुझे- कल्याण का मार्ग स्पष्ट दिख रहा है वह यह है की समस्त परिवार एवं राज्य कार्य से वियुक्त हो निर्जन बनमें बैठकर आत्मध्यान करुं। लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य और भी बढ गया। निदान सूमति नामक पुत्र के लिये राज्य का भार सौपकर देवनिर्मित सूर्यप्रभा पालकीपर सवार हो पुष्पक बनमें - गये। वहां उन्होंने मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन शाम के समय एक हजार रजाओंके साथ जिन दिक्षा ले ली। उसी समय उन्हें मन:पय्रय ज्ञान प्राप्त हो गया था। देव लोग तप:कल्याणक उत्सव मनाकर अपने स्थानोंपर वापिस चले गये। जब वे दो दिन बाद आहार लेनेके लिये शैलपूर नामके नगरमेंह गये तब उन्हें वहांके राजा पुष्पमित्रने विनयपूर्वक पडगाह कर नवधा भक्तिसे सुन्दर सुस्वादु आहार दिया। पात्र दानसे- प्रभावित होकर देवोंने राजा पुष्पमित्र के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान पुष्पदन्त आहार लेकर बनमें लौट आये और वहां पहलेकी तरह फिरसे आत्मध्यान में लीन हो गये। वे ध्यान पूर्ण होनेपर कभी प्रतिदिन और कभी दो तीन चार या इससे भी अधिक दिनों के अन्तरालसे पास के किसी नगर में आहार लेने के लिये जाते थे और वहांसे लौटकर पुन:बन मैं ध्यानैकतान हो- जाते थे। इस तरह तपश्चरण करते

हुए जब उनकी छद्मस्थ अवस्था के चार वर्ष व्यतीत हो- गये तब वे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर पुष्पक नामक दिक्षा बनमें नाग वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर बैठ गये। वही पर उन्हें कार्तिक शुक्ला द्वितीयाके दिन मूल नक्षत्र में शामके समय घातिया कर्मोका नाश होनेसे केवलज्ञान आदि अनन्त चतूष्टय प्राप्त हो गये थे। देवोंने आकर उनके ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञासे राज-कुवेर ने सुन्दर और सुविशाल समवसरण की रचना की। उसके मध्य में स्थिर होकर भगवान पुष्पदन्तने अपने दिव्य उपदेश से समस्त जीवोंको सन्तुष्ट किया। फिर इन्द्रकी प्रार्थना से उन्होंने देश -विदेश में घुमकर सध्दर्म का प्रचार किया। उनके समवसरण में विदर्भ आदि अठासी गणधर थे, पन्द्रह सौ श्रुतकेवली द्वादशांग के चार सौ अवधिज्ञानी थे, तेरह हजार विक्रिया ऋध्दिके धारक थे, सात हजार पांच सौ मन:पर्यय ज्ञानी ओर छह हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर दो लाख मुनिराज थे। घोषार्या जानकार थे, एक लाख पचपन हजार पांच सौ शिक्षक थे आठ हजार को आदि लेकर तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं थी। दो लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकांएं थी असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यञ्त थे।

सब देशोंमे विहार कर चुकने के बाद वे आयु के अन्तं समयमें सम्मेद शिखर पर जा पहुंचे। वहां उन्होंने एक हजार मुनियों के साथ योग निरोध किया और अन्तमें शुक्ल ध्यान केद्वारा अघातिया कर्मो का नाशकर भादो सुदी अष्टमी के दिन मूला नक्षत्रमें सन्ध्याके समय मोक्ष प्राप्त किया। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर उनकेनिर्वाण कल्याणक की पूजा की। भगवान पुष्पदन्त का ही दूसरा नाम सुविधिनाथ था।

भगवान शीतलनाथ

न शीतलाश्चन्दन चन्द्ररश्मयो न गांगमम्भो नचहार चष्टय:।
यथामुनेस्तेऽनघ वाक्यरश्मय: शमाम्बुगर्मा: शिशिरा विपश्चिताम् ।।

आचार्य समन्त भद्र

हे अनघ ! शान्तिरुप जल से युक्त आप की वचन रुपी किरणें विद्वानों के लिये जितनी शीतल है उतनी शीतल न चन्द्रमा की किरणें है, न चन्द्रन है , न गंगानदीका पानी है और न माणियो का हार ही है । आपकेवचनोंकी शीतलता में संसार का संताप एक क्षण में दूर हो- जाता है।

ं१ पूर्वभव परिचय

पुष्कर द्वीप के पूर्वार्ध भागमें जो मन्दरगिरि है उससे पूर्व की ओर विदेह क्षेत्रमें- सीतानदी के पश्चिम किनारे पर वत्स नामका देश है। उसकेसुसीमा नामक नगर में राजा पद्मगुल्म राज्य करते थे। वे हमेशा साम दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायोंसे पृथ्वी का पालन करते- थे। सन्धि ,विग्रह आदि राजेचित गुणोंसे परिचित थे। शरद् ऋतुके चन्द्रमा की तरह उनका निर्मल यश समस्त देश में फैला हुआ

था। व अत्यन्त प्रतापी होकर भी साधु स्वभावी पुरुष थे। एक दिन महाराज पद्मगुल्म राज सभामें बैठै हुए थे कि बनमालीने आम के बौर कुन्दकुड्मल, और केशर आदिके फूल सामने रखकर कहा महाराज ! ऋतुराज वसन्त के आगमन से उद्यान की शोभा बडी ही विचित्र हो गई है। आमों में बोर लग गये है उनपर बैठी हुई कोयल मनोहर गीत गाती है, कुन्दके फूलोंसे सब दिशाएं सफेद हो रही है, मौलिश्रीके सुगन्धित फूलोंपर मधुप गुज्जार कर रहे है, तालबोमे कमल के फूल फूल रहे है और उनकी पीली केशरो से- तालाबो का समस्त पानी पीला हो रहा है । उद्यानकी प्रत्येक वस्तुएं आपके शुभागमन की आशंकामें लीन हो रही है।

बनमाली के मुखसे वसन्त की शोभा का वर्णन सुनकर महाराज पद्मगुल्म बहूत ही हर्षित हुए। उसी समय उन्होंने वनमें जाकर वसन्तोत्सव मनानेकी आज्ञा जारी कर दी जिससे नंगरके- समस्त पुरुष अपने अपने परिवार के साथ वसन्तका उत्सव मनानेके लिये बनमें जा पहुंचे । राजा पद्मगुल्म भी अपनी रानियों और मित्र वर्ग के साथ बनमें पहंचे और वही रहने लगे। उन दिनोंमें यहां नृत्य संगीत आदि बडे बडे उत्सव मनाये जा रहे थे इसलिये- क्रम-क्रम से वसन्त के दो माह व्यतीत हो गये पर रजाको उसका पता नही चला । और जब धीरे धीरे बसन्त की शोभा विदा हो गई ओर ग्रीष्मकी तप्त लू चलने लगी तब राजा का उस ओर ख्याल गया। वहां उन्होंने बसन्तकी खेज की पर उसका एक भी चिन्ह उनकी नजर मे नही आया। यह देखकर महाराज पद्मगुल्म का ह्दय विषयों से विरक्त हो गया उन्होंने -सोचा कि संसार के सब पदार्थ इसी बसन्त के समान क्षणभंगुर है। मै जिसे नित्य समझकर तरह तरह की रंगरेलियां कर रहा था आज वही बसन्त यहां नजर नहीं आता। अब न आमों में बोर दिखाई पड रहा है ओर न कही उनपर कोयटक्की मीठी आवाज सुनाई दे रही है। अब मलयानिल का पता नही है किन्तु उसकी जगहपर ग्रीष्म की यह तप्त लू बह रही है। ओह ! अचेतन चीजो में इतना परिवर्तन ! पर मेरे ह्दयमें भोग विलासोंमे कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। खेद है की मैने अपनी आयु का बहुत भाग यूंही बिता दिया पर आज मेरे अन्तरंग नेत्र खुल गये है, आज मेरे ह्दय में दिव्य ज्योति प्रकाश डाल रही है उसके प्रकाशमें भी क्या अपना हित न खोज सकूंगा ? बस, बस खोज लिया मैने- हितका मार्ग । वह यह है की मै बहूत जल्दी राज्य के जंजाल से छुटकारा पाकर मुनि दीक्षा धारण करुं और किसी निर्जन बन में रहकर आत्म भाण्डार को शन्ति सुधासे भर दूं । ऐसा विचार कर महाराज पद्मगुल्म बन से घर वापिस आये- और वहां चन्दन नाम के पुत्र के लिये- राज्य देकर पुन:वनमें पहुंच गये। वहां उन्होंनें - किन्हीं आनन्द नामकें आचार्य के पास जिन दीक्षा ले ली ।

अब मुनिराज पद्मगुल्म निर्जन बन में रहकर आत्मशुध्दि करने लगे। गुरुदेव के चरण कमलों के पास रहकर उन्होंनें ग्यारह अंगो तक का ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। जब आयुका अन्तिम समय आया तब वे वाह्य पदार्थो से सर्वथा मोह छोडकर समाधि में स्थित हो गये जिससे- मरकर पन्द्रहवे आरण स्वर्ग में इन्द्र

हुए । वहां उनकी आयु बाईस सागर की थी, तीन हाथ का शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, ग्यारह माह बाद सुगन्धित श्वासोच्छास होता और बाईस मास बाद मानसिक आहार होता था। हजारों देवियां थी, मानसिक प्रविचार था , अणिमा आदि आठ ऋध्दियां थी और जन्मसे ही अवधिज्ञान था। वहां उनका समय सुख से- बीतने लगा। यही इन्द्र आगे भव में भगवान शीतलनाथ होंगे ।

ं२ वर्तमान परिचय

जब वहां उनकी आयु सिर्फ छह माह की बाकी रह गई और वे पृथिवीपर जन्म लेने के लिये तत्पर हुए तब इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मलय देशके भद्रपुर नगर में- इक्ष्वाकुवंशीय दृढस्थ नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सुनन्दा था । भगवान शीतलनाथ के गर्भ में आने के छह माह पहले से ही देवोंने दृढरथ ओर सुनन्दा के घरपर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरु कर दी । चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र में महारानी सुनन्दा ने रात्रिके पिछले समय सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त इन्द्रने स्वर्गभूमि छोडकर उसकेगर्भ में प्रवेश किया । पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर सुनन्दा रानी को जो हर्ष हुआ उस का वर्णन नही किया जा सकता । उसी दिन देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्रभूषणों से राजदम्पति की पूजा की और गर्भ - कल्याणक का उत्सव मनाया । माघ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ नक्षत्र में सुनन्दा के उदरसे भगवान शीतलनाथ का जन्म हुआ। देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और वहांसे से आकर भद्रपुर में धुमधाम से जन्मका उत्सव मनाया । इन्द्रने-बन्धु बान्धवोंकी सलाह से उनका शीतलनाथ रखा जो वास्तवमें योग्य था क्योंकि उनकी पावन मूर्ति देखनेसे प्राणी मात्रके ह्दय शीतल हो जाते थे। राज परिवारमें बडे ही दुलारसे उनका पालन हुआ था । पुष्पदन्त स्वामी के मोक्ष जानेके बाद नौकरोड सागर बीत जाने पर भगवान शीतलनाथ हुए थे । इनके जन्म लेनेके पहिले पल्यके चौथाई भाग तक धर्मका विच्छेद हो गया था । इनकी आयु एक लाख पूर्व की थी और शरीर नब्बे धनुष ऊंचा था इनका शरीर सुवर्णके समान स्निग्ध पीत वर्णका था जब आयुका चौथाई भाग कुमार अवस्था में बीत गया तब इन्हें राज्य की प्राप्त हुई थी । राज्य पाकर इन्होंने भली भांति राज्य का पालन किया और धर्म , अर्थ ,काम का समान रुप से सेवन किया था। किसी एक दिन भगवान शीतलनाथ घूमने के लिये-एक बनमें गये थे । जब वे बनमें पहुंचे थे तब बनमें सब वृक्ष हिमंओस्र से आच्छादित थे - पर थोडी देर बाद सूर्य का उदय होनेसे वह हिमंओस्र अपने आप नष्ट हो गई थी। यह देखकर उनका ह्दय विषयोंकी ओर से सर्वथा हट गया। उन्होंने संसार के सब पदार्थो का हिमके समान क्षण -भंगुर समझ ाकर उनसे राग भाव छोड दिया ओर बन में जाकर तप करनेका का द्ढ निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंनें आकर इनके उक्त विचारोका समर्थन किया जिससे उनकी वैराग्य -धारा और भी अधिक वेग से प्रवाहित हो उठी। निदान आप पुत्र के लिये राज्य सोंपकर देवनिर्मित शुक्रप्रभा पालकी पर सवार हो सहेतुक वनमें पहुंचे और वहां

माघ कृष्ण द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ नक्षत्र - में शाम के समय एक हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये। आप के दीक्षा लेते ही मन:पर्याय ज्ञान प्राप्त हो गया था। भगवान शीतलनाथ दो-दिन के उपवास के बाद आहार लेनेकी इच्छा से अरिष्ट नामक नगरमें गये। वहां राज पुनर्वसुने-बडी प्रसन्नतासे नवधा भक्तिपूर्वक उन्हें आहार दिया। पात्र दान के प्रभाव से राजा पुनर्वसुके

घरपर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये। इस तरह तपश्चरण करते हुए उन्होंने अल्पज्ञ अवस्था में तीन वर्ष बिताये । फिर पौष कृष्ण चतुर्दशी के दिन शाम के समय पूर्वाषाढ नक्षत्र में उन्हें दिव्य - आलोक केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उसी समय देवोंनें आकर ज्ञानकल्याणक का उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञा से कुवेर ने समवसरण की रचना की । उसके मध्यमें स्थित होकर आपने सर्व धर्मका उपदेश देकर उपस्थित जनता को सन्तुष्ट कियां। इन्द्रकी प्रार्थना से उन्होंने अनेक देशो-में बिहार कर संसार और मोक्ष का स्वरुप बतलाया दार्शनिक गुत्थियां सुलझाई और सबको हितका मार्ग बतलाया था। उनके उपदेशके प्रभाव से लोगोंके ह्दयोंसे धर्म-कर्म की शिथिलता उस तरह दुर हो गई थी जिस तरह की सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है।

उनके समवसरणमें ऋध्दियों और मन:पर्यय ज्ञानके धारक इक्यासी गणधर थे। चौदह सौ द्वादशांग के जानकार थे। उनसठ हजार दो सौ शिक्षक थे, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी थे, ओर पांच हजार सात सौ वादी मुनि थे । इस तरह सब मिलकर एक लाख मुनि थे। धारण आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकायें थी, दो लाख श्रावक थे, चार लाख श्राविकायें थी ,असंख्यात देव-देवियां संख्यात तिर्यञ्च थे।

जब भगवान् शीतलनाथ की दिव्यध्वनि खिरती थी तब समस्त सभा चित्र - लिखित सी नीरव और स्तब्ध हो जाती थी। वे आयुके उन्त समयमें सम्मेद शिखरपर पहुंचे , वहां एक महीनेका योग ! निरोध कर हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योगसे विराजमान हो गये और आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शामके समय अघातिया कर्मोका नाशकर स्वतंत्र सदन मोक्ष - महलको प्राप्त हुए। देवोंने आकर निर्वाण भूमि की पूजा की और उनके शरीरकी भस्म अपने शरीरमें लगाकर आनन्दसे गाते, नाचते हुए अपने स्थानोंपर चले गये।

इनके तीर्थके अन्त समयमें काल दोषसे वक्ता श्रोता, और धर्मात्मा लोगोंके अभाव होने-
से समीचीन धर्म लुप्तप्राय हो गया था।

भगवान श्रेयान्सनाथ

निर्घूय यस्य निज जन्मनि सत्यमस्त , मान्ध्यं चराचर मशेष मवेक्षमाणम्।
ज्ञानंप्रतीप विरहान्निज रुप संस्थं श्रेयांन् जिन:सदिशता दशिवच्युतिंव:।।

- आचार्य गुणभद्र

उत्पन्न होते ही समस्त अज्ञानअन्धकार को नष्ट कर के सब चर अचर पदार्थो को देखने वाला जिनका उत्तम ज्ञान बाधक कारणोंका अभाव होने से अपने स्वरुप में स्थिर हो गया था वे श्रीश्रेयान्स जिनेन्द्र तुम सबको अमंगलकी हानि करें ।

१ पूर्वभव परिचय

पुष्कर द्वीप के पूर्व मेरुसे पूर्व दिशा की ओर विदेह क्षेत्रामें एक सुकच्छ नामका देश है। उसमें सीता नदीके उत्तर तटपर एक क्षेमपुर नगर था। क्षेमपुर नगरमें रहने वाले-मनुषों को हमेशा क्षेम मंगल प्राप्त होते रहते थे, इसलिए उसका क्षेमपुर नाम बिलकुल सार्थक था। किसी समय उस में नलिनप्रभ नाम का राजा राज्य करता था। उसका शरीर बहुत ही सुन्दर था। उसने अनुपम बाहुबल से समस्त क्षत्रियों को जीतकर अपना राज्य निष्कण्टक बना लिया था वह उत्साह मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियोंसे । तथा इनसे प्राप्त हुई तीन सिध्दियोंसे संयुक्त था। उसकी बुध्दिका तो ठिकाना नहीं था। अच्छे अच्छे मन्त्री जिन कामोंका विचार भी नही कर सकते थे ओर जिन सामायिक समस्याओं को नहीं सुलझा पाते थे उन्हें यह अनायास ही सोच लेता ओर सुलझा देता था। उसका अन्त:पुर सुन्दरी और सुशीला स्त्रियों से भरा हुआ था। आज्ञाकारी पुत्र थे, निष्कण्टक राज्य था, अटूट सम्पत्ति थी और स्वयं स्वस्थ निरोग था। इस तरह वह
हर एक तरह से सुखी होंकर प्रजाका पालन करता था। एक दिन राजा नलिनप्रभ राजसभा में बैठा हुआ था उसी समय बनमाली ने आकर कहा की सहसाम्र बनमें - अनन्त नामक जिनेन्द्र आये है। उनके प्रतापसे बनकी शोभा बडी ही विचित्र हो गई है। वहां सब ऋतुएं एक सी अपनी शोभा प्रकट कर रही है ओर सिंह , हळस्ती, सर्प, नेवला आदि जीव अपना जातीय बैर छोडकर एक दूसरेसे हिल मिल रहे है। जिनेन्द्र का आगमन सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ कि उसके सारे शरीर में रोमांच निकल आये। वह बनमालीको उचित पारितोषिक देकर परिवार सहित अनन्त जिनेन्द्र की बन्दनाके लिये सहसाम्र बन में गया। वहां उनकी दिव्य मुर्ति देखते ही उसका ह्दय भक्ति से गद्‌गद् हो गया। उसने उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किया। अनन्त जिनेन्द्रनें प्रभावक शब्दों में तत्वों का व्याख्यान किया ओर अन्तमें संसार के दु:खोंका निरुपण किया । जिसे सुनकर नलिनप्रभ सहसा प्रतिबुध्द हो गया वह एक दम संसार से भयभीत हो उठा । उस समय उसकी अवस्था ठीक स्वप्न देख कर जागे हुए मनुष्य की तरह हो रही थी। उसने उसी समय भर्राई हुई आवाज में कहा नाथ ! इन दु:खों से बचने का भी कोई उपाय है ? तब अनन्त जिनेन्द्र ने संसार के दु:ख दूर करनेके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र का वर्णन किया। देशव्रत और महाव्रत का महत्व समझाया। जिससे वह विषयोसे अत्यन्त विरक्त हो गया। उसने घर जाकर पहले तो अपने सुपुत्र के लिये राज्य दिया और फिर बनमें जाकर अनेक राजाओं के साथ जिनदीक्षा ले ली। वहां ग्यारह अंगोका अभ्यास कर सोलह भावनाओं का चिंतवन किया जिससे-उसके तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीर छोंडकर मुनिराज

नलिनप्रभ का जीव अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर नामक विमान में इन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु बाईस सागर की थी । शरीर की ऊंचाई तीन हाथ की थी, लेश्या शुक्ल थी और जन्मसें ही अवधिज्ञान था। वहां पर अनेक सुन्दरी देवियों केसाथ बाईस सागर तक तरह तरह केसुख भोगता रहा । यही इन्द्र आगे केभव में भगवान् श्रेयान्सनाथ होगा ।

९ वर्तमान परिचय

जब वहां पर उसकी आयु सिर्फ छह माह की शेष रह गई और वह पृथ्वी पर जन्म लेने के लिये सम्मुख हुआ। उस समय इसी जम्बूद्वीपकेभरत क्षेत्र केसिंहपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशीय विष्णु नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी महादेवी का नाम सुनन्दा था ऊपर हे हुए इन्द्रने ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठीकेदिन श्रवण नक्षत्रामें रात्रि केअन्तिम भाग में स्वर्ग भूमि को-छोडकर सुनन्दा महारानी केगर्भ में प्रवेश किया। उस समय सुनन्दा ने हाथी बैल आदि सोलह स्वप्न देखे थे। सवेरा होते ही उसने प्राणनाथ विष्णु महाराज से स्वप्नों का फल सुना जिससे वह बहुत ही प्रसन्न हुई । उस समय देवोंने आकर राजदम्पति का खूब सत्कार किया ओर गर्भ कल्याणक का उत्सव मनाया। वह गर्भस्थ बालक का ही प्रभाव था जो उस केगर्भ में आनेकेछह माह पहले से लेकर पन्द्रह माहतक महाराज विष्णुकेघरपर प्रतिदिन रत्नों की वर्षा होती रही और देवकुमारियां महारानी सुनन्दा की शुश्रूषा करती रहीं । धीरे-धीरे गर्भ का समय व्यतीत होनेपर फल्गुन कृष्ण एकादशीकेदिन श्रवण नक्षत्र में सुनन्दा देवीने पुत्र -रत्न उत्पन्न किया । उस समय अनेक शुभ शकून हुए थे। देवों ने मेरु पर्वतपर ले जाकर बालक का कलशाभिषेक किया । फिर सिंहपूर वापिस आकर कई तरहसे जन्म - महोवत्सव मनाया। इन्द्र ने महाराज विष्णुकी सलाह से बालक का श्रेयान्स नाम रखा । यह ठीक था, क्योंकि वह आगे चलकर समस्त प्रजा को श्रेयोमार्ग -मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त करेगा । उत्सव समाप्त कर देव लोग अपनी जगहपर वापिस चले गये। पर जाते- समय इन्द्र ऐसे अनेक देव कुमारों को वहींपर छोड गया था जो अपनी लीलाओंसे बालक श्रेयान्सनाथ को हमेशा प्रसन्न रखा करते थे । राज्य परिवारमें बडे प्यारसे उनका पालन होने - लगा ।

इन्द्र स्वर्ग से उनकेलिय अच्छे अछे वस्त्रआभूषण और खिलौना वगैरह भेजा करता था। शीतलनाथ स्वामी केमोक्ष जानेकेबाद सौ सागर, छ्यासठ लाख, छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर बीत जानेपर भगवान श्रेयान्सनाथ हुए थे। इनकी आयु भी इसी उन्तराल में शामिल - है इनको जन्म लेनेके पहीले भारतवर्ष में आधे पल्यतक धर्म का विच्छेद हो गया था। इनकेउत्पन्न होते ही धर्म का उत्थान फिर से होने लगा था। इनकी आयु चौरासी लाख की थी, शरीर
की ऊंचाई अस्सी धनुषकी थी और रंग सुवर्णकेसमान स्निग्ध पीला था।

जब उनकेकुमार काल केइक्कीस लाख बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ । राज्य पाकर उन्होंने सुचारु रुप से प्रजाका पालन किया। वे अपने बलसे हमेशा दृष्टोंका निग्रह करते -और सज्जनोंपर अनुग्रह करते थे। योग्य कुलीन कन्याओं केसाथ उनकी शादी हुई थी। जिससे उनका राज्य-

काल सुखसे बीतता था। देव लोग बीच बीच में तरह तरहके विनोदोंसे उन्हें प्रसन्न करते - रहते थे। इस तरह इन्होंने ब्यालीस लाख वर्षतक राज्य किया। इसकेअनन्तर किसी एक दिन वसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे इन्हेंने दीक्षा लेकर तप करनेका दृढ निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की । चारो निकाय के- देवोंने दीक्षा - कल्याणक का उत्सव किया । भगवान श्रेयान्सनाथ श्रेयस्कर नामक पुत्र के लिये राज्य देकर देवनिर्मित विमलप्रभा पालकी पर सवार हो गये । देव लोग उस पालकी को मनोहर नाम केउद्यान में ले गये । वहां उन्होंने दो दिन केउपवास की प्रतिज्ञा कर फाल्गुन कृष्णा एकादशी केदिन श्रवण नक्षत्र में सबेरे केसमय एक हजार राजाओं केसाथ दिगम्बर दिक्षा ले ली दिक्षा लेते ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। तीसरे दिन चार इ ाान केधारण करने वाले भगवान श्रेयान्सनाथ आहार लेने की इच्छासे सिध्दार्थ नगर में गये। वहां पर नन्द राजा- ने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया। दानकेप्रभाव से राजा नन्द कें घरपर देवोंने - पंचाश्चर्य प्रकट किये । भगवान आहार लेकर वन में वापिस चले गये । इस तरह उन्हेंने छद्मस्थ अवस्था - में मौन पूर्व दो वर्ष व्यतीत किये । इसकेबाद दो दिन केउपवास की प्रतिज्ञा लेकर उसी मनोहर बन में तुम्बुर वृक्ष के नीचे - ध्यान लगाकर विराजमान हुअे। वही उन्हें माघ कृष्ण
अमावस्या के- दिन श्रवण नक्षत्र में सायंकाल केसमय लोकालोक का प्रकाश करनें वाला पूर्णज्ञान प्राप्त हो -गया। उसी समय देवोंने आकर उनका कैवल्य महोत्सव मनया। कुबेरने समवसरण की रचना की उसकेमध्यमें सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया। अर्थात् दिव्य ध्वनिकेद्वारा सप्त तत्व नव पदार्थो का वर्णन किया। जिससे प्रभावित होकर अनेक नर - नारियों ने देश व्रत और महाव्रत ग्रहण किया। प्रथम उपदेश समाप्त होनपर इन्द्रने मनोहर शब्दों
में उनकी स्तुती की ओर फिर विहार करने केलिये प्रार्थना की । आवश्यकता देखते हुए उन्होंने -आर्य क्षेत्रोंमें सर्वत्र विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया और शीतलनाथ केअन्तिम तीर्थ में जो- आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद हो गया था उसे दूर किया।

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि उनकेसतहत्तर गणधर थे , तेरह सौ ग्यारह श्रुतकेवली थे, अडतालीस हजार दो सौ शिक्षक थे, छह हजार अविधज्ञानी थे, छह हजार पांच सौ केवल ज्ञानी थे , ग्यारह हजार विक्रिया ऋध्दि केधारक थे, छह हजार मन:पर्यय ज्ञानी थे, और पांच हजार वादी थे ।

वे आयुकेअन्त में सम्मेद शिखरपर पहुंचे और वहां एक महीने तक योग निरोध कर हजार राजाओं केसाथ प्रतिमा योग से विराजमान हो गये । वहींपर उन्होंने - शुक्लध्यान केद्वारा अघातिया कर्मो की पचासी प्रकृतियों का क्षय कर श्रावण शुक्ला पूर्णमासी केदिन धनिष्ठा नक्षत्र में शाम केसमय मुक्तिमन्दिर मोक्षमहल में प्रवेश किया । देवों
ने आकर उनकेनिर्वाण - क्षेत्र की पूजा की ।

भगवान वासुपूज्य

शिवासु पूज्योभ्युदय क्रियासु त्वं वासुपूज्य स्त्रिदशेन्द्र पूज्यः।

मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्रः दीपार्चिषा किंतपनो न पूज्यः ।।- समन्तभद्र.

हे मुनिराज ! आप वासुपूज्य, मंगलमयी अभ्युदय क्रियाओं में देवराज के द्वारा पूजनीय हैं-पूजा करने के योग्य हैं । इसलिये मुझ अल्पबुध्दि के द्वारा भी पूजनीय हैं । क्या दीपक की ज्योति से सुर्य पूजनीय नहीं होता ?

९ पूर्वभव वर्णन

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व मेरु की ओर सीता नदीके पूर्वीय तटपर एक वत्सकावती देश है। उसके रत्नपुर नाम के नगर मे पद्मोत्तर नाम का राजा राज्य करता था वह धर्म अर्थ काम का पालन करते समय धर्म को कभी नहीं भुलता था। ऊषा की लाली की तरह उसका दिव्य प्रताप समस्त दिशाओं में फैल रहा था। उसका यश क्षीरसागर की तरंगों के
समान शूक्ल था पर उनकी तरह चंचल नहीं था। उसके एक धनमित्र नामका पुत्र था जिसे-राज्यभार सौपकर वह सुखसे समय बिताता था।

किसी एक दिन मनोहर नाम के पर्वतपर युगन्धर महाराज का शुभागमन हुआ। जब वनमाली ने राजा के लिये उनके आगमन की खबर दी तब वह हर्ष से पुलकित बदन हुआ। परिवार सहित उनकी बन्दना के लिये गया और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय युगन्धर महाराज अनित्य, अशरण , संसार , एकत्व ,अन्यत्व, अशुचि,
आस्त्रव, संवर निर्जरा , लोक बोधि दुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओं का वर्णन कर रहे-थे । ज्योंही पद्मोत्तर राजा ने अनित्य आदि भावानावों का स्वरुप सुना त्योंही उसके हृदय में वैराग्यरुपी सागर हिलोरे लेने लगा । उसे संसार और शरीर के प्रति अत्यन्त घृणा पैदा हो-गई । वह सोचने - लगा कि मैनें अपना विशाल जीवन व्यर्थ ही खो दिया । जिन स्त्रियों , पुत्रों और राज्य के लिये - मैं हमेशा व्याकुल रहता हूं जिनके लिये मैं बुरेसे बुरे कार्य करने में नहीं हिचकिचाता वे एक भी मेरे साथ नहीं जावेंगें ।

मैं अकेला ही दुर्गतियों में पडकर दुःख की चक्कियों में पीसा जाऊंगा । ओह ! कितना था मेरा अज्ञान ? अभी तक मैं जिन भोगोंको सबसे अच्छा मानता था आज वे ही भोग काले सर्पो की तरह भयानक मालूम होते हैं । धन्य है महाराज युगंधर को ! जिन के दिव्य उपदेश से पथ - भ्रान्त पथिक ठीक रास्तेपर पहुंच जाते है । इन्हींने मेरे हृदयमें दिव्य ज्योति का प्रकाश फैल था है । जिससे मैं आज अच्छे और बुरेका विचार कर सकने के लिये समर्थ हुआ हुँ । अब जबतक मैं समस्त परिग्रह छोडकर निर्ग्रन्थ न हो जाऊंगा , इन निर्जन वनके विशुध्द वायुमण्डल में निवास नहीं करुंगा तब तक मुझे चैन नहीं पड सकती, इत्यादि विचार कर वह घर गया और युवराज धनमित्र के लिये राज्य देकर निःशल्य हो अनेक राजाओं के साथ वनमें-जाकर दीक्षित हो गया । दीक्षित होने के बाद राजा नहीं मुनिराज पद्मोत्तर

ने खूब तपश्चरण किया । निरन्तर शास्त्रों का अध्ययन कर ग्यारह अंगो का ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवनकर तीर्थकर नामा नाम कर्मकी पुण्य प्रकृति का बन्ध किया ।

तदनन्तर आयु के अन्त में सन्यासपूर्वक शरीर छोडकर महाशुक्र स्वर्ग में महाशुक्र नामका इन्द्र हुआ । वहां उसकी सोलह सागर की आयु थी । चार हाथ का शरीर था। पद्मलेश्या थी । वह आठ महीने - के बाद श्वासोच्छास लेता और सोलह हजार वर्ष बाद में आहार ग्रहण करता था । अणिमा, महिमा आदि ऋध्दियों का स्वामी था । उसे जन्म से ही अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था । जिससे वह नीचे चौथे नरक तक की बात जान लेता था । वहां अनेक देवियां अपने-दिव्य रुपसे उसे लुभाती रहती थी । यही इन्द्र आगेकेभवमें भगवान वासुपूज्य होगा । कहां ? किसके? कब ? सो सुनिये ।

२ वर्तमान परिचय

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक चम्पा नगर है उसमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा वसुपूज्य राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम जयावती था । जब ऊपर कहे हुए इन्द्र की वहां की आयु सिर्फ छह माह की बाकी रह गई थी तभीसे कुबेरने महाराज वसुपूज्य के घर पर रत्नों की वर्षा करनी शुरु कर दी और श्री, ऱ्ही आदि देवियां महारानी की सेवा केलिये आ गई ।

एक दिन महारानी जयावती ने रात्रि के पिछले भाग में ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे । सबेरे उठ कर जब उसने प्राणनाथ से उनका फल पूछा तब उन्होंने कहा आज आषाढ कृष्णा षष्ठीकेदिन शतभिषा नक्षत्र में तुम्हारे गर्भ में किसी तीर्थकर बालक ने प्रवेश किया है । ये स्वप्न उसी की विभूति के परिचायक है । याद रखिये उसी दिन उसी इन्द्र ने वसुन्धरा छोडकर रानी जयावती केगर्भ में प्रवेश किया था । चतुर्णिकाय केदेवों ने आकर गर्भ कल्याणक का
उत्सव मनाया और उत्तम उत्तम आभूषणों से राजा रानीका सत्कार किया ।

अनुक्रम से गर्भ केदिन पूर्ण होने पर रानी ने फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी केदिन पुत्र रत्न का प्रसव किया । उसी समय हर्षसे नाचते गाते हुए समस्त देव और इन्द्र चम्पा नगर आये और वहां से बाल तीर्थकर को ऐरावत हाथीपर बैठाकर मेरु पर्वत पर ले गये । वहां सौधर्म और ऐशान इन्द्रने उनका क्षीरसागर के जल से अभिषेक किया । अभिषेक के बाद इन्द्राणी ने सुकोमल वस्त्रों से उनका शरीर पोंछकर उस में उत्तम उत्तम आभूषण पहिनायें - और इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें स्तुति की । यह सब कर चुकने के बाद देव लोग बाल तीर्थकर को - चम्पा नगर में वापिस ले आये । बालक का अतुल ऐश्वर्य देखकर माता जयावती का ह्दय मारे - आनन्द से फूला न समाता था। इन्द्रने अनेक उत्सव किये , बन्धु - बान्धवों की सलाह से उनका वासुपूज्य नाम रखा और उनके विनोदके लिये अनेक देव कुमारोंको छोडकर सब केसाथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया ।

यहां राज्य परिवार में बडे प्रेंमसे भगवान वासुपूज्य का लालन पालन होने- लगा । भगवान श्रेयान्सनाथ के मोक्ष चले जानेके बाद चौअन सागर व्यतीत होनेपर वासुपूज्य स्वामी हुए थे । इनकी आयु भी इसी प्रमाणमें शामिल है क्योंकि हरएक जगह जो अन्तराल बतलाया गया है वह एक तीर्थकरकेबाद दुसरे तीर्थकर केमोक्ष होने तक का है, जन्म
तक का नहीं है । उनकी आयु बहत्तर लाख वर्ष की थी, शरीर की ऊंचाई सत्तर धनुष की और रंग केसर केसमान था। आपकेजन्म लेनेकेपहले तीन पल्यतक भरत वर्ष में धर्म का विच्छेद रहा था पर ज्योंही आप उत्पन्न हुए त्योंही लोग पुन: जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे । जब उनकेकुमार काल केअठारह लाख वर्ष बीत चुकेतब महाराज वासुपूज्य ने उन्हें
राज्य देकर उनकी शादी करनी चाही। पर किसी कारण से उनका ह्दय विषय भोगों से सर्वथा विरक्त हो गया। उन्होंने न राज्य लेना स्वीकार किया और न विवाह ही करना । किन्तु उदासीन होकर दु:ख मय संसार का स्वरुप सोचेने लगे। उन्होंने क्रम-क्रम से अनित्य आदि भावनाओं का विचार किया जिससे उनका वैराग्य परम अवधितक पहुंच गया। समय
लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की और उनकेविचारों का शतश: समर्थन किया । चारों निकाय केदेवों ने आकर दीक्षा - कल्याणक का उत्सव किया ।

भगवान वासुपूज्य देवनिर्मित पालकीपर सवार होकर मनोहर नाम के बनमें पहुंचे और वहां आत्मीयजनों से पूछकर उन्होंने फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी केदिन विशाखा नक्षत्र में शाम केसमय दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर जिन दीक्षा लेली । पारणा के दिन आहार लेने की इच्छा से - उन्होंने महानगर में प्रवेश किया । वहांपर सुन्दर नाम केराजाने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया । उससे प्रभावित होकर देवोंने उनकेघरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । भगवान वासुपूज्य आहार लेकर पुन:वन में लौट गये । इस तरह कठिन तपस्या करते हुए उन्होंने - छद्मस्थ अवस्था को एक वर्ष मौन पूर्वक व्यतीत किया । उसकेबाद वे दीक्षा वन में पहंचे - और वहां उपवास की प्रतिज्ञा लेकर कदम्ब वृक्षकेनीचे ध्यान लगा कर विराजमान हुए । उसी समय उन्हें माघ शुक्ला द्वितीया केदिन विशाखा नक्षत्रमें शामकेसमय पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान प्राप्त हो गया । देवोंने आकर ज्ञान - कल्याणक का उत्सव मनाया । इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने दिव्य सभा समवसरण की रचना की । जिसकेबीच में स्थित होकर उन्होंने सात तत्व , नव पदारर्थ , छह द्रव्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र आदि अनेक विषयों का व्याख्यान देकर अपना मौन भंग किया ।

उनकेउपदेश से प्रभावित होकर अनेक भव्य नर-नारियोंने यथाशक्ति व्रत विधान धारण किये । इन्द्रकी प्रार्थना करनेपर उन्होंने प्राय:सभी आर्य क्षेत्रोंमें विहार किया । जिससे समस्त लोग पुन: जैन धर्ममें दीक्षित हो गये । पथभ्रान्त पथिक पुन:सच्चे पथपर आ गये ।

उनके समवसरण में धर्म आदि छ्यासठ गणधर थे, बारह सौ ग्यारह अड और चौदह पूर्व के जानकार थे, उनतालीस हजार दो सौ शिक्षक थे, पांच हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे, छह हजार केवली थे, दश हजार विक्रिया ऋध्दि के धारक थे, छह हजार मन:पर्यय ज्ञानी थे - और चार हजार दो सौ वादी थे इस तर बहत्तर हजार मुनिराज थे । इनके सिवाय सेना आदि एक लाख छह हजार आर्यिकाएं थी , दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकाएं असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे ।

अनेक देशों में विहार करने के बाद जब उनकी आयु एक हजार वर्ष की रह गई तब वे चम्पानगर में आये और शेष समय उन्होंने वहींपर बिताया । एक माह की आयु रहनेपर उन्होंने राजत मौलिका नदी के तटपर विद्यमान मन्दार गिरि की सुन्दर शिखर पर मनोहर नाम के वन में योग निरोध किया और पर्यकासन से विराजमान हो गये । वहींपर शुक्ल
ध्यान के प्रताप से अघातिया कर्मो का क्षय कर भादो सुदी चौदशके दिन शाम के समय विशाखा नक्षत्र में मुक्ति भामिनी के अधिपति बन गये । उनके साथ चौरानवे और मुनियोंने निर्वाण लाभ किया था । देवों ने आकर भक्ति पूर्वक उनके निर्वाण -क्षेत्र की पूजा की और निर्वाण महोत्सव मनाया ।

भगवान विमलनाथ

स्तिमिततम समाधि ध्वस्त नि:शेष दोषं क्रम गम करणान्तर्धान हीनाव बोधम् ।
विमल ममल मूर्ति कीर्ति भाजंद्युभाजां नमत विमलताप्तौ भक्तिभारेण भव्या : ।।

- आचार्य गुणभद्र

अत्यन्त निश्चल समाधि के द्वारा जिन्होंने समस्त दोषों को नष्ट कर दिया है ऐसे - तथा क्रम , साधन और विनाश से रहीत है ज्ञान जिन्होंका ऐसे निर्मल मूर्ति वाले और देवों की कीर्तिको प्राप्त होने वाले भगवान विमलनाथ को हे भव्य प्राणियों ! निर्मलताकी प्राप्ती के लिये - भक्तिपूर्वक नमस्कार करो ।

ं१ पूर्वभव परिचय

पश्चिम धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वतसे पश्चिम की और सीता नदी के तटपर एक रम्यकावती देश है किसी समय वहां पद्मसेन राजा राज्य करते थे । उनकी शासन प्रणाली बडी ही विचित्र थी । उनके राज्य में न कोई वर्ण - व्यवस्था का उल्लंघन करता था, न कोई झूठ बोलता था , न कोई किसी को व्यर्थ ही सताता था, न कोई चोरी करता था और न कोई पर - स्त्रियों का अपहरण करता था । वहां की प्रजा धर्म , अर्थ और काम का समान रुप से पालन करती थी । एक दिन महाराज पद्मसेन राजसभा में बैठे हुए थे उसी समय बन नाम के माली ने आकर अनेक फल -फूल भेंट करते हुए कहा की महाराज ! प्रीतिंकर बनमें सर्वगुप्त केवली का शुभागमन हुआ है । राजा पद्मसेन केवली का आगमन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए । उन के समस्त शरीर में मारे हर्ष के रोमांच निकल आये और आंखों

से हर्षके -आंसू बहने लगे । उसी समय उन्होंने सिहासन से उठकर जिस ओर परमेश्वर सर्वगुप्त विराजमान थे उस ओर सात पैंड चलकर परोक्ष नमस्कार किया । फिर समस्त परिवार और नगर के प्रतिष्ठित लोगों के साथ साथ उनकी वन्दना के लिये प्रीतिंकर नाम के बन में गये ।

केवल सर्वगुप्त से उस बन की अपूर्व ही शोभा हो गई थी । उस में एक साथ छहों ऋतुएं अपनी अपनी शोभा प्रकट कर रही थी । महाराज पद्मसेनने विनत मूर्धा होकर केवली के चरणों में प्रणाम किया और उपदेश सुनने की इच्छासे वहीं यथोचित स्थान पर बैठ गये । केवली भगवान ने दिव्य ध्वनिके द्वारा सात तत्वों का व्याख्यान किया और चतुर्गति रुप संसार के दु:खों का वर्णन किया । संसार का दु:खमय वातावरण सुनकर महाराज पद्मसेन का ह्दय एकदम बिभीत हो गया । उसी समय उनके ह्दय में वैराग्य सागर की तरल तरंगे - उठने लगी । जब केवली महाराज की दिव्य ध्वनि से उन्हें पता चला कि अब मेरे केवल दो भव ही बाकी रह गये है । तब तो उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा । उन्होंने घर आकर पद्म नामक पुत्रके लिये राज्य दिया और फिर बनमें जाकर उन्ही केवलीके निकट जिनदीक्षा ले ली । उनके साथ रहकर उन्हीं से ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध किया जिससे आयुके अन्त में सन्यासपूर्वक शरीर छोडकर बारहवे सहस्त्रार स्वर्ग में सहस्त्रार नामके इन्द्र हुए ।

वहां उनकी आयु अठारह सागर की थी, एक धनुष -चार हाथ ऊंचा शरीर था, जघन्य शुक्ल लेश्या थी, वे वहां अठारह हजार वर्ष बाद आहर लेते और नौ महा बाद श्वासोच्छवास ग्रहण करते थे । वहां अनेक देवियां अपने अतुल्य रुपसे उनके लोचनों को प्रसन्न किया करती थी । उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था जिस से वे चौथे नरक तकको वार्ता जान लेते थे । वे अपनी दिव्य शक्ति से सब जगह घुम घुमकर प्रकृति की अद्‌भुत विभूति देखते थे । यही सहस्त्रोरेन्द्र आगे भव में भगवान विमलनाथ होंगे ।

(२ वर्तमान परिचय

भरत क्षेत्रे की कम्पिला नगरी में इक्ष्वाकुवंशीय राजा कृतवर्मा राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम जयश्यामा था । पाठक जिस सहस्त्रारेन्द्र से परिचित है उसकी आयु जब सिर्फ छह माह की बाकी रह गई तभीसे महाराज कृतवर्मा के घर पर देवोंने रत्नों की वर्षा करनी शुरु कर दी । महादेवी जयश्यामानें ज्येष्ठ कृष्ण दशमी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में रात्रि के पिछले भाग में सोलह स्वप्न देखे और उसी समय अपने मुखकमलमें प्रवेश करता हुआ
एक गन्धसिन्दुर - उत्तम हाथी देखा । उसी समय उक्त इन्द्रने स्वर्गवसुन्धरा से मोह छोडकर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सवेरा होते ही उसने प्राणनाथ कृतवर्मा से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में किसी तीर्थकर बालकने अवतरण किया है । यह रत्नोंकी वर्षा और ये सोलह स्वप्न उसीकी विभूति बतला रहे है । इधर महाराज कृतवर्मा रानी जयश्यामा के लिये - स्वप्नोंका मधुर फल

सुनाकर आनन्द पहुंचा रहे थे उधर देवों केआसन कम्पायमान हुए जिससे उन्हेंाने भगवान विमलनाथ के गर्भावतार का निश्चय कर लिया और समस्त परिवार के साथ आकर कम्पिलापुरी में खूब उत्सव कियां अच्छे - अछे वस्त्राभूषणों से राजद्म्पति का सत्कार किया । जैसे जैसे महारानी का गर्भ बढता जाता था वैसे समस्त बन्धु बान्धुवों का हर्ष बढता जाता था । नित्य प्रति होनेवाले अच्छ अच्छे शकुन सभी लोगो कों हर्षित करते थे । जब गर्भ केदिन पूर्ण हो गये तब महादेवी ने माघ शुक्ल चतुर्दशी केउत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में मति श्रुति, अवधि ज्ञानधारी पुत्र रत्न को उत्पन्न किया । उसी समय इन्द्रदि देवों ने आकर जन्म कल्याण का उत्सव किया और अनेक प्रकारसे बाल तीर्थकर की स्तुति कर उनका विमलप्रभ नाम रक्खा । भगवान विमलप्रभ का राज परिवार में बडे प्यारसे - लालन पालन होने लगा वे अपनी बाल्योचित चेष्टाओं से माता पिता को अत्यन्त हर्षित करते थे । वासुपूज्य स्वामी केमोक्ष जाने केतीस